अध्याय-4
अपरोधन, अंतःस्यंदन और वाष्पोत्सर्जन

जलविज्ञानीय चक्र में, वर्षा के रूप में गिरने वाला पानी, समावेशित जल, (अंत: स्पंदित जल) सतही अपवाह और भूमिगत जल भंडारण के रूप में फिर से प्रकट होता है । इसे आधुनिक जल विज्ञान साहित्य में वर्षा विभाजन भी कहा जाता है। सतही और भूजल जलाशय लगातार पुनर्भरण (वर्षा) द्वारा पुनः भर रहे हैं और वाष्पीकरण द्वारा खाली हो रहे हैं । वर्षा के घटकों के विभाजन से संबंधित विभिन्न अवधारणाओं की प्राचीन भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से कल्पना की गई थी। इस अध्याय में इस क्षेत्र में वेदों और अन्य प्राचीन भारतीय साहित्य में उपलब्ध प्राचीन ज्ञान के बारे में संक्षेप में चर्चा की गयी है।

अपरोधन और अंतःस्यंदन

अपरोधन वर्षा का वह हिस्सा है जो पृथ्वी की सतह के द्वारा ग्रहण किया जाता है और जो तत्पश्चात् वाष्पित हो जाता है। अपरोधन वर्षा की मात्रा का 15-50% हो सकता है, जो कि पानी के बजट का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है । कई प्रकार के अपरोधन हो सकते हैं, जो एक दूसरे के साथ परस्पर क्रिया भी कर सकते हैं (गेरिट्स, 2010)। अंतःस्पदंन शब्द उस प्रक्रिया का वर्णन करने के लिए का उपयोग किया जाता है जिसमे पानी मिट्टी द्वारा सोखा या अवशोषित किया जाता है (हॉर्टन, 1933) और यह जलविज्ञानीय चक्र के महत्वपूर्ण घटको में से एक है। जलविज्ञानीय चक्र में जल महासागरों और भूमि पर विभिन्न सतही जल पिंडों से वाष्पीकृत होकर वायुमंडल का हिस्सा बन जाता है। वाष्पित नमी ऊपर उठती है और वायुमंडल में तब तक फैलाती है जब तक कि यह भूमि पर या सागर में बरस नहीं जाती। वर्षा के पानी का अपरोधन हो सकता है और पौधों द्वारा वाष्पोत्सर्जन में उपयोग किया जा सकता है या यह जमीन पर बह भी सकता है।

अपरोधन के कुछ संदर्भ प्राचीन भारतीय साहित्य में अन्य विषयों यथा कि वर्षा, मेघ निर्माण और पर्यावरण शुद्धिकरण पर वनों और वनस्पतियों के प्रभाव की व्याख्या के साथ अन्तमिश्रित पाए जाते हैं। तैत्रीय/(तैत्तरीय) संहिता में वर्षा के होने पर वनों के प्रभाव का उल्लेख किया गया है (टीएस II, 4.9.3)

> सौभययैवाहुत्या दिवो वृष्टिमव रुन्धे मघुषा सं यौत्यपां
> वा एष ओषधीनां रसो यन्मध्वभदय एवौषधीभयो वर्षत्यथो
> अद्भय एवौषधीभयो वृष्टिं नि नयति।। ताई.अरा.,II,4.9.3 ।।

महाभारत के श्लोक 184.15-17 में कहा गया है कि पौधे अपनी जड़ों से पानी पीते हैं। पौधों द्वारा पानी के ऊपर उठने की प्रक्रिया को एक पाइप के माध्यम से पानी के चढ़ने के उदाहरण द्वारा समझा जा सकता है। यह कहा जाता है कि हवा के संयुग्मन से जल उठने की प्रक्रिया सुगम हो जाती है। इसके द्वारा स्पष्ट रूप से मिट्टी में केशिका प्रक्रिया के द्वारा पानी के ऊपर उठने और नीचे गिरने के ज्ञान का पता चलता है:

पादैः सलिलपानाच्च् व्याधीनां वापि दर्शनात्।
व्याधिप्रतिक्रियत्वाच्च विघते रसनं द्रुमे।। **एम.बी.** .XII,184.15 ।।

वक्त्रेणोत्पलनालेन यथोध्वं जलमाद्देत।
तथा पवनसंयुक्तः पादैः पिवति पादपः। **एम.बी.** .XII,184.16 ।।

जहाँ तक अंतःस्पदंन की बात है, विद्वान, वराहमिहिर ने स्पष्ट रूप से वृहत संहिता के उद्घाटन श्लोक में इसका खुलासा किया है। प्रथम श्लोक में बताया गया है कि कुछ स्थानों पर जल स्तर उच्च है और अन्य स्थानों पर यह निम्न है:

पुंसां यथादेन शिरास्तथैव क्षितावपि प्रोन्नतनिम्नसंस्थाः (वृ.सं.,54.1)

इसका तात्पर्य है कि पृथ्वी के नीचे पानी की प्रवृत्ति मानव शरीर में नसों की तरह हैं, कुछ उच्च और कुछ न्यून । श्लोक 2 इस तरह पढ़ा जाता है।

एकेन वर्णेन रसेन चाम्भश्च्युतं नभस्तो वसुधाविशेषात्।
ननारसत्वं वहुवर्णतां च गतं परीक्ष्यं क्षितितुल्यमेव।। वृ.सं.,54.2 ।।

यह बताता है कि आकाश से गिरता पानी पृथ्वी की विभिन्न प्रकृति से कई रंग और अलग- अलग स्वाद को ग्रहण करता है। इस प्रकार, तात्पर्य यह है कि वर्षा जल का अंतःस्पदंन भूजल का स्रोत है। भूजल वर्षा जल का एक जटिल फलन है। वर्षा जल का मूल रूप से एक जैसा ही रंग होता है लेकिन पृथ्वी की सतह पर नीचे आने के बाद और अन्तःस्रवण के बाद विभिन्न रंगों और स्वादों को ग्रहण करता है।

1200 ईस्वी के युग में बापुदेश शास्त्री द्वारा लिखित तीन छंदों (भास्कराचार्य द्वारा लिखित सिद्धांत सिरोमणि में, भाग-2, गोलाध्याय, त्रिपाठी, 1969) में कोहरे या धुंध की घटना के लिए वैज्ञानिक विवरण प्रदान किए गए हैं कोहरे हेतु “रजः सहित” शब्द का प्रयोग किया गया है । छंद में शुद्ध रूप में कहा गया है कि बरसात के अंत में विघटित बादल (नमी) पृथ्वी की सतह

और पर्वत, पेड़, वनस्पति आच्छादन या उद्यान के पास लटके रहते हैं और हवा और गर्मी की गतिविधि के माध्यम से इन सतहों से गायब हो जाते हैं। इससे स्पष्ट रूप से जमीनी सामग्री, वनस्पति आदि द्वारा अपरोधन और हवा और गर्मी की गतिविधि द्वारा समय के साथ इसके गायब होने के तथ्य का पता चलता है।

वाष्पोत्सर्जन

वाष्पीकरण और वाष्पन-उत्सर्जन और अन्य जलविज्ञानीय प्रक्रियाओं के साथ इन घटनाओं का अंतर्संबंध वैदिक और अन्य प्राचीन भारतीयों द्वारा अच्छी तरह से समझा गया था जैसा कि प्राचीन साहित्य से साबित होता है। ऋग्वेद (I, 6.10) में यह उल्लेख है कि सूर्य की किरण पृथ्वी और अन्य पदार्थों में निहित जल को छोटे छोटे कणों में तोड़ती है, फिर ये छोटे छोटे कण हवा में चढ़ते हैं और बादल का निर्माण करते हैं, यथा :

इतो वा सातिमीमर्हे दिवो वा पार्थिवादधि।
इन्द्र महोवार जसः।। आर.वी.I,6.10 ।।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी।।आर.वी.I,105.12 ।।

ऋग्वेद के श्लोक I, 105.12 में कहा गया है कि समुद्र आदि से जल सूर्य की किरणों की गर्मी के कारण वाष्पित हो जाता है, जो वर्षा के बनने का प्राथमिक कारण है। ऋग्वेद के श्लोक IV, 58.1 में भी यही तथ्य सामने आया है:

समुद्रादूर्मिर्मधुमां उदारदुपांशुना समृमतत्वमानट्।
घृतस्य नाम गुह्यं यदस्ति जिव्हा देवनाममृतस्य नाभिः।।आर.वी.IV,58.1।।

ऋग्वेद के श्लोक आठवें, 72.4 में कहा गया है कि वायुमंडलीय हवा सूर्य के कारण गर्म हो जाती है, फिर यह गर्मी पृथ्वी तक पहुंचती है और आर्द्रता को वाष्प में परिवर्तित करती है और इसे बादलों के रूप में इकट्ठा करती है, जो वर्षा और खाद्य उत्पादन का कारण है यथा :

जाम्यतीतये धनुर्वयोधा अरुहद्वनम्।
ध्षर्दे जिह्वायवधात्।। आर.वी.VIII,72.4 ।।

ऋग्वेद की तरह, यजुर्वेद में वाष्पीकरण के साथ-साथ उत्सर्जन के बारे में कुछ ज्ञान भी शामिल है, यथा:

देवो वनस्पतिर्देवमिन्द्रं वयाधसं देवो देवमवर्धयत।। वाई.वी.,28.43 ।।

देवो देवैर्वनस्पति हिरण्ययर्णो मधुशाखः सुपिप्पलों देवमिन्द्रभवर्धयत्।। वाई.वी.,28.20।।

यह कहता है कि वनस्पति पृथ्वी से पानी को आकर्षित करती है एंव गर्मी, हवा इत्यादि द्वारा वायुमंडल में वाष्पित करती है जिससे बादलों का निर्माण होता है। इसी तरह, अथर्ववेद (IV, 25.2 और IV, 27.14) में कहा गया है कि सार्वभौमिक सूर्य और हवा के कारण, पानी आकाश में जाता है और वर्षा के रूप में वापस आता है। वाष्पोत्सर्जन सूर्य की किरणों और हवा के कारण होता है, यथा:

ययोः संख्याता वरिमा पार्थिवानि याभयां रर्जो युपितयन्तरिक्षे।
ययोः प्रायं नान्वानशे कश्चन तौ र्नो मुज्चतमंहसः।। ए.वी.IV.25.2 ।।

अपः समुद्राद दिवमुदवंहन्ति दिवस्पृथिवीमभि ये सृजन्ति।
ये अभिदरीशानां मरुतश्चंरान्ति ते नो मुज्चन्तंहसः।। ए.वी.IV,27.74 ।।

ऋग्वेद के श्लोक 173.6 में कहा गया है कि वायुमंडल ने पृथ्वी को चारों तरफ से घेर रखा है।

प्र यदित्था महिना नृभयो अस्त्यरं रोदसी कक्ष्ये नास्मै।
सं विव्य इन्द्रो वृजनं न भूमा भर्ति स्वधावां ओपशमिव घाम्।। आर.वी.I,173.6 ।।

सौर घटनाएं आकाश या स्वर्ग से जुड़ी हैं, जबकि बिजली, वर्षा और हवा को वायुमंडल में होने वाली घटनाओं के रूप में संदर्भित किया जाता है (आर.वी., IV, 53.5, III, 56, I., 108.9-10), लेकिन इन पदों से यह संदिग्ध लगता है कि ऋग्वेद को वायु-मंडल की वास्तविक सीमा या ऊर्ध्वाधर ऊंचाई का पता या अनुमान था?

यदिन्द्राग्नी परभस्यां पृथिव्यां मध्यमस्यामवमस्यामुत स्थः।
अतः परि वृषणावा हि यातंमथा सोमस्य पिवतं सुतस्य।। आर.वी.I,108.9-10 ।।

षड् भारों एको अचरन्विभर्त्यृतं पर्षिष्ठमुप गाव आगुः।
तिस्त्रो महीस्परास्तस्थुरत्यागुहा द्वे निहिते दर्श्येका।। आर.वी.III, 56.2 ।।

त्री षधस्था सिन्धवास्त्रिः कवीनामुत त्रिमाताविदयेषु सम्राट।
ऋतावरीर्योषणास्तिस्त्रो अप्यास्त्रिरा दिवो विदये प्रत्यमानाः।। **आर.वी.**,III,56.5।।

त्रिख्तरिक्षं सविता महित्वना त्री रंजासि परिभूस्त्रीणि रोचना।
तिस्त्रो दिवः पथिवीस्तिस्त्र इन्वति त्रिभिब्रतैरभि नो रक्षति त्मना।**आर.वी.**,IV,53.5 ।।

हमने पढ़ा है “सवित्र (सूर्य) परिमाण में आकाश के तीन खंडों तीन दुनिया, तीन शानदार मण्डल, तीन आकाश, तीन गुना पृथ्वी को घेरे है । इस संबंध में एक बहुत ही महत्वपूर्ण सवाल मन में आता है कि क्या आकाश के तीन विभाजन क्षोभ मंडल, समताप मंडल और आयनमंडल हैं? पुनः पृथ्वी के अति शीतल, समशीतोष्ण और ऊष्ण में तीन विभाजन फिर से हमें यह सोचने योग्य बनाते हैं कि क्या आर्य अति शीतल और समशीतोष्ण क्षेत्रों के बारे में जानते थे और यह संभव है कि उनकी समुद्री यात्रा और आवास के लिए अग्रिम अभियान के दौरान उन्हें अति शीतल क्षेत्र का पता चल हो।

वैदिक लोग अच्छी तरह से जानते थे कि पौधों (या वनों) का पानी की हानि और वर्षा के कारण पर कुछ प्रभाव हैं (टीएस।, ॥, 4.9.3)।

सौभययैवाहुत्या दिवो वृष्टमव रुन्धे मघुषा सं यौत्यापां वा एष ओषधीनां
रसो यन्मध्वभदय एवौषधीभयो वर्ष्सत्यथो उद्भय एवौषधीभयो वृष्टिं नि नयति।। **टीएस.**,II,4.9.3।।

सूर्यताप की अवधारणा और भूमिका को तैत्तरिया संहिता में भी संदर्भित किया गया है। अग्नि (सूर्यताप) वर्षा का कारण बनता है (तैत्तरीय संहिता, ॥, 4.10.2), यथा:

सप्तकपालसौर्यमेककपालमग्निर्वा इतो वृष्ट मुदीरयति मरुतः सृष्टां नयन्ति यदा खलु
वा असावादित्यो न्यड. रष्मिभिः र्प्यावर्ततेथ वर्षति धामछदिवि खलु वै भूत्वा
वर्षत्येता वै देवता वृष्टया ईशते ता एवं स्वेन भागधेयेनोप धावति ता।। **टीएस.**II,4.10.2 ।।

महाकाव्य रामायण, पृथ्वी से चंद्रमा की दूरी तक के वातावरण, इसकी स्थितियों और ब्रह्मांडीय क्षेत्रों के बारे में बहुत सारी जानकारी प्रस्तुत करता है। संपूर्ण वायुमंडलीय ब्रह्मांडीय फैलाव को नौ क्षेत्रों में विभाजित किया गया था, जहां अंतिम क्षेत्र सबसे लंबा है। रामायण (।.47.4) पौराणिक रूप से वायुमंडलीय क्षेत्रों की उत्पत्ति का वर्णन करती है।

वातस्कन्धा इमे सप्त चरंन्तु दिवि पुचक।
मारुता इति विख्याता दिव्यरुपा मामात्मजाः।। **राम.**.I,47.4 ।।

गहन सूर्यताप और उच्च तापमान मौजूदा बादलों के विनाश या खंडन या विसर्जन के साधन के रूप में काम करता है इस प्रकार रामायण के श्लोक VI.43.29 में कहा गया है:

निर्विभेद शरैस्तीक्ष्णैः करैर्मेघमिवांशुमान्।। **राम.**.VI,43-29 ।।

रामायण में, हम सामान्य श्लोक (II.105.20) में सूर्य की किरणों द्वारा वाष्पीकरण के बारे में, और समुद्र के सौर ताप के कारण बादलों के बनने के बारे में (VII, 32.68) पढ़ते हैं, यथा :

आयूर्षि क्षपयन्त्याशु ग्रीष्मे जलिमवांशवः।। **राम.**,II,105.20 ।।
उद्भूत आतपापाये प्योदानामिवाम्बुधौ।। **राम.**,VII,32.68 ।।

रामायण के श्लोक VII.25.30 में भी समुद्र के पानी के सूर्य ताप से गर्म होने को संदर्भित किया गया है।

दौदात्म्येनात्मनोद्वतस्ताप्ताम्भा इव सागरः।
ततो ब्रवीद दशग्रीवः कुद्रः संरक्तलोचनः।। **राम.**.VII,25.30 ।।

महाकाव्य महाभारत के बारहवें स्कंद में, वातावरण को सात क्षेत्रों (स्कंद, गोलार्द्ध) में विभाजित किया गया है, और उन पर काफी विस्तार से चर्चा की गयी है। आवह, नाम की हवा, (महाभारत XII 328.37), जोर से आवाज के साथ बहती है। एक और हवा जो चार सागर से पानी पीती है और इसे चूसकर यह आकाश में बादलों को और बाद में वर्षा के देवता वर्षा को वर्षा करने के लिए देती है उसे उद्वह कहा जाता है (महाभारत XII, 328.38-39), यथा:

अम्बरे स्नेहमभयेत्य विधुदा भयश्च महाधुतिः।
आवहो नाम संवाति द्वितीयः श्वसनो नदन।। **एम.बी.** .XII,328.37 ।।

उदयं ज्योतिषां शश्वत सोमादीनां करोति यः।
अन्तर्देहेषु चोदानां यं वदन्ति मनीषिणः।। **एम.बी.** .XII,328.38 ।।

यश्चतुर्म्य समुद्रेभयो वायुर्धारयते जलम्।
उद्धत्याददते चापो जीभूतेभयोम्बरे निलः।। **एम.बी.** .XII,328.39 ।।

हवा के अलावा, सूर्य को वाष्पोत्सर्जन के मुख्य कारण के रूप में माना गया है । वन पर्व हमें बताता है कि सूर्य सभी पौधों और जल निकायों से नमी को वाष्पित करता है जो वर्षा का

कारण बनती हैं (महाभारत III.3.49)। महाकाव्य हमें विभिन्न प्रकार के बादलों और वायुमंडलीय परतों की सूचना भी देता है ।

त्वमादायांशुमिस्तेजो निदार्घो सर्वदेहिनाम।
सवौषाधिरसानां च पुनर्वर्षासु मुज्चसि।। **एम.बी.** .III.3.49 ।।

संदहत्यैकार्णवं सर्व त्वं शोषयसि रश्मिभिः।। **एम.बी.** .III.3.59 ।।

महर्षि कणाद ने अपने (वैशे. सूत्र., 5.2.5) में पानी के वाष्पीकरण का कारण इस प्रकार बताया है, "सूर्य की किरणें हवा के साथ संयोजन के माध्यम से पानी के ऊपर उठने का कारण बनती हैं":

नाइयो वायु संयोगादारोहणंम्।। **वै.सूत्र**5.2.5 ।।

महर्षि कणाद को वायुमंडल में संवहन धाराओं का भी ज्ञान था जिसे वे बहुत ही वैज्ञानिक शब्दों में संदर्भित करते हैं:

नोदनापीडनात्संयुक्त संयोगाच्च।। **वै.सूत्र**5.2.6 ।।

लेखक और टिप्पणीकार शंकर मिश्रा (1600 ईस्वी) ने इसे विस्तारपूर्वक समझाया है और इसे नीचे से गर्म पानी की केतली के उदाहरण के साथ चित्रित किया है (त्रिपाठी, 1969)। यह निर्णायक रूप से साबित करता है कि महान दार्शनिक कणाद को पता था कि सूर्य की किरणें वायुमंडल में उपस्थित विकिरण और संवहन धाराओं के माध्यम से पृथ्वी को गर्म करती हैं।

विभिन्न पुराण हमें बताते हैं कि वायुमंडल में सात क्षेत्र या परतें हैं (वात स्कंध) या सात प्रकार की हवाएँ हैं (वायु पुराण 49.163) हैं । नारद पुराण सात वायु मार्गो की बात करता है (60.13) अर्थात सप्तैतेवायुमार्गा: कूर्मा अध्याय. 41.6-7 में भी थोड़े बदलाव के साथ यही बात कही गयी है, जैसा यहाँ वर्णित है:

रसातलतलात्सप्त सप्तैवार्ध्वतलाः क्षितौ।
सप्त स्कन्धास्तथा वायोः सब्रह्मसदना द्विजाः।। **वायु**.49.163 ।।

आवहः प्रवहश्चैत ततैवानुवहः पुनः।
सम्बहो विवहश्चैव तदूद्ध्र्व स्यात्परावहः।। **कर्म**.41.6 ।।
तथा परिवहश्चैव वायोर्वे सप्त नेमयः।। **कर्म.** 41.7 ।।

वाष्पीकरण, बादल बनने और उनके वायु या वायुमंडल (वात स्कन्ध) को क्षेत्रों के साथ संबंध (वात स्कंध) कई पुराणों (ब्रह्माण्ड खंड II, अध्याय 9., वायु. अध्याय 51, लिंग, I, 41, मत्स्य, I, 54) में काफी संतोषजनक रूप से वर्णित किया गया है और इन विषयों पर उन्होंने एक पूर्ण-पृथक अध्याय समर्पित किया है, जो सकारात्मक रूप से यह बताता है कि मौसम विज्ञान की इस शाखा के महत्व को महसूस किया गया था। कुछ पदों को यहाँ उद्धृत किया गया है:

नावष्टया परिविश्मेत वारिणा दीप्यते रविः।
तस्मादयः पिबन्यो वै दीप्यते रविरंबरे।। **ब्रह्माण्ड**, Vol.II,9.138 ।।

तस्य ते रश्मयः सप्त पिबंत्यंभो महार्णवात।
तेनाहारेण संदीप्ताः सूर्याः सप्त भवंत्युत।। **ब्रह्माण्ड**,Vol.II,9.139 ।।

वर्षाघर्मो हिमं रात्रिः संध्या चैव दिनं तथा।
शुभाशुभं प्रजानां च ध्रुवात्सर्व प्रवर्तते।। **वायु**. 51.11 ।।

ध्रुवेणाधिकृतांश्चैव सूर्योपावृत्य तिष्ठतिः।
तदेषदीप्त किरणः स कालीग्निर्दिवाकरः।। **वायु**. 51.12 ।।

सूर्यः किरणजालेन वायुमुक्तेन सर्वशः।
जगतो जलमादत्ते कृत्स्नस्य द्विज सत्तमाः।। **वायु**. 51.13 ।।

वायु पुराण की उपरोक्त पंक्तियों में बताया गया है कि सूर्य की किरणें हवा के साथ पृथ्वी से पानी निकालती हैं। लिंग पुराण (I, 41.11,21 और 30), विशेष रूप से पानी के वाष्पीकरण में सूर्य की किरणों की भूमिका को पहचानता है, जो बादलों और बाद में वर्षा में परिवर्तित हो जाता है।

प्रख्यात जैन ग्रंथ ‘सूर्य प्रजनापति ’ में सूर्यताप, विकिरण और सूर्य के प्रकाश के परावर्तन और ऊर्जा और पृथ्वी और विभिन्न सतहों के ताप पर ध्यान केन्द्रित किया है। "धवलता अलवाड़ी" की इसकी अवधारणा में इनका योगदान अद्भुत प्रतीत होता है, जब हम इस तथ्य को ध्यान में रखते हैं कि यह काम कम से कम लगभग आधा सहस्राब्दी ई.पू. में किया गया था । धवलता अलवाड़ी की अवधारणा आधुनिक जल-मौसम विज्ञान का एक महत्वपूर्ण पहलू है। वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रिया एल्बिडो से बहुत प्रभावित होती है।

वैछुतो जाठरः सौरावारिगर्भास्त्रयोनियः।। **लिंग.** I,41.11।।

याश्चासौ तपने सूर्यः पिवन्नभो गभस्थिभिः।
पार्थिवाग्निविभिश्रोसौ दित्यः शुचिरिति स्मृत।। **लिंग.** I,41.11 ।।

वसंते चैव ग्रीष्मे च शनैः स तपते त्रिभिः।
वर्षास्वथो शरदि च चतुर्भिस्यं प्रवर्षति।। **लिंग.** I,41.30 ।।

ध्रुवेणाधिष्टताश्चापः सूर्यो वै गुहय तिष्ठति।
सर्वभूतशरीरेषु त्वापो हयानुश्चताश्चियाः।। **मत्स्य.** I,54.29 ।।

तेजोभिः सर्वलोकेभय आदत्ते रश्मिभिर्जलम।। **मत्स्य.** I,54.31 ।।

समुद्राद्वायुसंयोगात वहन्त्यापो गभस्तयः।
ततस्त्वृतुवशात्कालेपरिवर्तन दिवाकरः।। **मत्स्य.** I, 54.321 ।।

प्रभर्ता 4, सूत्र 25 में, सूर्यताप या सूर्य की गर्मी(ताप क्षेत्र) (प्रभर्ता 5, सूत्र 26) (लेखा प्रतिहति के रूप में नामित, सूर्य के प्रकाश का परावर्तन) सूर्य के प्रकाश के फैलने, विकिरण, सूर्यताप, परावर्तन और अल्बेडो के प्रकीर्णन की घटनाओं का सटीक वैज्ञानिक विवरण दिया है। सबसे पहले, इसमें अन्य संप्रदायों के अनुयायियों (परतीरथिकानाम) द्वारा रखे गए सूर्य के प्रकाश के परावर्तन पर बीस सिद्धांतों का उल्लेख है- फिर, यह एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य को संदर्भित करता है कि अनदेखी (अदृश्य) वस्तुओं में भी परावर्तन क्षमता होती है।

प्रभर्ता 9 की सूक्ति 30 में संवहन की प्रकृति और पृथ्वी की सतह, जल निकायों और इसकी वस्तुओं और वातावरण और उसके महाद्वीपों के संदर्भ में सूर्य की किरण के माध्यम से तपने की चर्चा की गयी है। सूर्य प्रजनाति के लेखक का भी कहना है कि सूर्य की तिरछी किरण, ऊर्ध्वाधर किरण के मुकाबले कम गर्मी देती है। इसकी सूर्य उदय, दोपहर और शाम और विभिन्न स्थानों (या अक्षांश) के संदर्भ में चर्चा की जाती है। इससे पता चलता है कि जैन काल के दौरान, भारतीयों को ऊष्मा विनिमय प्रक्रियाओं के गहन तकनीकी सिद्धांतों के बारे में अच्छी तरह से पता था।

उपसंहार

अध्याय में प्रस्तुत विभिन्न संदर्भों और चर्चाओं से पता चलता है कि प्राचीन भारतीयों की अपरोधन, अंतःस्पदंन की प्रक्रियाओं के बारे में महत्वपूर्ण समझ विकसित थी। वनस्पति द्वारा अपरोधित जल एंव पृथ्वी की सतह के निकट असम पदार्थों पर जल की बूंदे भी देखी गई थी, जो कि वायु एंव ऊष्मा द्वारा अदृष्य हो जाती थी। जो कि हवा और गर्मी की गतिविधियों से गायब हो जाती हैं, का भी ज्ञान था । आधुनिक मृदा विज्ञान हमें बताता है कि मिट्टी परस्पर जुड़े छिद्र स्थानों से बनी है। इसका प्राचीन भारतीयों द्वारा स्पष्ट रूप से ज्ञान था और उन्होंने इसकी मानव शरीर में नसों के साथ तुलना की थी, जिसके माध्यम से अंतःस्पदंन होता है, जो भूजल का स्रोत है। प्राचीन भारतीयों का वाष्पीकरण और उत्सर्जन के बारे में भी बहुत वैज्ञानिक ज्ञान विकसित था । सूर्यकी किरणें, हवा, आर्द्रता, वनस्पति इत्यादि वाष्पोत्सर्जन के प्रमुख कारण हैं, यह उन्हें पता था। प्राचीन भारतीयों ने जलविज्ञानीय चक्र, ऊर्जा परिसंचरण और खाद्य उत्पादन और, प्राकृतिक पारिस्थितकी तंत्र को बनाए रखने के लिए वाष्पोत्सर्जन के महत्त्व को माना था । सौर घटना, प्रकाश, हवा, बादल का निर्माण आदि वायुमंडल की निचली परत में होते हैं। वायुमंडल को क्षोभ मंडल, समताप मंडल और आयनमंडल में और ग्लोब को समशीतोष्ण और नाज़ुक क्षेत्र में विभाजित किया गया था, जो आधुनिक मौसम विज्ञान के लिए तुलनीय है। पौधे जड़ों के माध्यम से पानी पीते हैं जो हवा के संयोजन द्वारा सुगम होता है जो महाभारत में वर्णित है महाभारत पूरी तरह से मिट्टी, पानी और पौधों के संबंध में केशिका की आधुनिक अवधारणा की पुष्टि करता है। यह तथ्य कि पौधों और वन आदि पानी की हानि पर कुछ प्रभाव रखते हैं, महाद्वीपों और जल निकायों की तापन दर में अंतर , संवहन धाराओं का गठन और उनके प्रभाव अच्छी तरह से ज्ञात थे। हालाँकि, यह प्राचीन जलविज्ञान साहित्य में आगे के शोध का विषय है कि अपरोधन, अंतःस्पदंन और वाष्पोत्सर्जन की प्रक्रियाओं को निर्धारित करने के लिए विशिष्ट उपकरण / तकनीकें उस समय थीं या नहीं ?